नैतिकता का महत्व
और
आवश्यकता

मौलाना मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ां

विषय-सूची

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

''दयावान कृपाशील परमेश्वर के नाम से''

नैतिकता का महत्व और आवश्यकता

नैतिकता को मानव जीवन में जो महत्व प्राप्त है उससे किसी को इनकार नहीं हो सकता। इतिहास में किसी ऐसी सभ्यता का उदाहरण नहीं मिलता जिसमें सत्य और असत्य की सिरे से कोई कल्पना और धारणा ही न पाई जाती हो। जो लोग नियतिवाद (Determinism) के समर्थक हैं वे भी खुलकर इस बात का दावा नहीं कर सकते कि उनकी दृष्टि में झूठ और सच में या ईमानदारी और बेईमानी में कोई अन्तर नहीं है।

इससे कौन इनकार कर सकता है कि सच्चाई, शुभेच्छा और नियमबद्ध आचरण मानव के अपेक्षित गुण हैं। मानव की अन्तरात्मा के लिए यह कभी सम्भव नहीं हो सकता कि वह वचनबद्धता की तुलना में छल-प्रपंच को और त्याग और आत्मोत्सर्ग के स्थान पर स्वार्थपरता को और प्रेम और बन्धुत्व की तुलना में ईर्ष्या-द्वेष और अत्याचार को श्रेष्ठतर समझने लगे।

मानव से किसी विशेष प्रकार की नैतिकता की अपेक्षा रखने का अर्थ यह है कि हम मानव के संकल्प-स्वातन्त्र्य में विश्वास करते हैं। इसलिए कि जहाँ कोई संकल्प और चुनाव की आज़ादी न पाई जाती हो वहाँ किसी चरित्र और नैतिकता का सवाल ही नहीं उठता। यह एक तथ्य है कि नैतिकता का सम्बन्ध मानव के संकल्प और चुनाव की आज़ादी से है। मानव को दुनिया में संकल्प और चुनाव की स्वतन्त्रता प्राप्त है इसलिए उसका एक नैतिक अस्तित्व है। यही चीज़ है जो उसे अन्य जीवों की तुलना में विशिष्टता प्रदान करती है।

मानवीय चरित्र और उसके कर्म की कोई भौतिक व्याख्या सम्भव नहीं। चेतना को जड़ की उत्पत्ति समझना सत्य नहीं। जड़ पदार्थों का अध्ययन एक भौतिक शोध हो सकता है किन्तु भौतिक साधनों के द्वारा चेतना की व्यांख्या किसी प्रकार नहीं की ज़ा सकती। मैक्स प्लैंक (Max Plank) ने कहा है -

> "कोई व्यक्ति, चाहे कितना ही अक़्लमन्द क्यों न हो, मात्र कारण-कार्य नियम के द्वारा अपने सचेतन कर्मों के निर्णायक प्रेरकों के सम्बन्ध में कभी भी सही परिणाम पर नहीं पहुँच सकता। इसके लिए किसी अन्य नियम, अर्थात नैतिक नियमों, की आवश्यकता है।" (The Universe in the Light of Modern Physics)

मानव को संकल्पवान अस्तित्व समझने के लिए आवश्यक है कि मानव की स्थायी और स्वतन्त्र हैसियत को स्वीकार किया जाए। क्योंकि इसके बिना उसे नैतिक और चारित्रिक गुणों से सम्पन्न मानने का कोई औचित्य शेष नहीं रहता।

नैतिकता और चरित्र के लिए संकल्प और चुनाव की स्वतन्त्रता के अतिरिक्त ऐसे वास्तविक, स्थायी और निरपेक्ष (Real, Permanent and Absolute) जीवन-मूल्यों की भी आवश्यकता है जो नैतिक नियमों का आधार बन सकें। जिनका मूल्य और महत्व सापेक्ष और अस्थायी न हो, बल्कि उनका मूल्य स्थायी और अपना स्वयं का हो। जिनकी सुरक्षा के लिए आदमी अपना सब कुछ क़ुरबान कर सके।

नैतिकता और परम अभीष्ट सत्ता

इसके अतिरिक्त मानव जीवन में किसी उच्च नैतिक व्यवस्था की कल्पना उस समय तक नहीं की जा सकती जब तक मानव का कोई ऐसा अभीष्ट न हो जो परम और अन्तिम हो, जिसकी ओर बढ़ने में हम अपने तमाम प्रयासों को लगाकर शान्ति पा सकें और जिस तक पहुँचने पर हमारी अपनी पूर्णता भी निर्भर करती हो। जीवन का कोई उच्च अभीष्ट और अभिप्राय ही आदमी को हर प्रकार की पथभ्रष्टता और बिखराव से बचाकर प्राकृतिक और स्वाभाविक मार्ग पर लगा सकता है। इसी की प्राप्ति का प्रयास

मानव की सच्ची सफलता और उसके व्यक्तित्व की पूर्णता की ज़मानत हो सकता है। इसके बिना हमारे जीवन में भी और विशेष रूप से हमारे आन्तरिक जीवन में सन्तुलन पैदा नहीं हो सकता। ऑस्पन्सकी (Ospunsky) ने लिखा है -

> "मानव जब तक अपने अन्तर्विरोधों में ऐक्य न उत्पन्न कर ले, उसे अपने आप को 'मैं' कहने का कोई अधिकार नहीं। इसलिए कि इसके बिना उसका अपना कोई संकल्प ही नहीं है। जो व्यक्ति यह ऐक्य प्राप्त किए बिना अपने आप को संकल्पवान समझता है तो यह उसकी भूल (Error) है। संकल्प परिणाम होता है इच्छाओं का। जिस व्यक्ति की इच्छाओं में ही स्थायित्व न हो उसकी हैसियत मात्र अपनी भावनाओं और बाह्य प्रभावों के खिलौने की होगी। उसे ख़बर नहीं हो सकती कि दूसरी ही साँस में वह क्या कह देगा और क्या कर गुज़रेगा। उसके जीवन के प्रत्येक क्षण पर आकस्मिकताओं (Chances) का परदा पड़ा होगा।
>
> (The New Model of Universe)

नैतिकता और सत्यज्ञान

जीवन में आन्तरिक समायोजन का बड़ा महत्व है। आन्तरिक समायोजन के बिना समाज में भी किसी समायोजन और ऐक्य की आशा नहीं की जा सकती। रही समस्या नैतिक मूल्यों (Moral Values) की उपलब्धि की तो सत्यज्ञान के बिना यह स्वप्न कभी साकार नहीं हो सकता। राशडल (Rashdall) का यह विचार सत्यानुकूल है -

> "यह सम्भव नहीं कि सत्य के बारे में हमारा दृष्टिकोण नैतिकता की आधारभूत समस्याओं को प्रभावित न करे या हमारे नैतिक दृष्टिकोण से सत्य की हमारी अवधारणा प्रभावित न होती हो।"

सत्य की उपेक्षा करके किसी उच्च और दृढ़ नैतिक व्यवस्था की उपलब्धि की कल्पना भी नहीं की जा सकती। स्थायी और निरपेक्ष नैतिक मूल्यों के लिए अनिवार्य है कि जीवन का अपना कोई वास्तविक लक्ष्य और उद्देश्य हो,

इस जगत् को किसी महान उद्देश्य के तहत अस्तित्व में लाया गया हो और जगत् की समस्त वस्तुएँ उस उद्देश्य की प्राप्ति का साधनमात्र हों।

नैतिकता और जीवन की निरन्तरता

फिर इससे आगे बढ़कर किसी उच्च नैतिक व्यवस्था के लिए यह भी आवश्यक है कि मानव अपने जीवन की निरन्तरता पर विश्वास रखता हो। क्योंकि अगर हमारा जीवन चिरस्थायी नहीं तो चिरस्थायी मूल्यों से हमारा सम्बन्ध और सम्पर्क स्थापित नहीं हो सकता। इसके इलावा यह भी एक तथ्य है कि अगर लोगों का उद्देश्य केवल निकटस्थ हितों की प्राप्ति हो तो कभी भी उनके चरित्र में सन्तुलन पैदा नहीं हो सकता और न ऐसे लोगों द्वारा निर्मित समाज सुदृढ़ और मज़बूत हो सकता है।

मैकेनजी (Mackenji) ने नैतिक समस्याओं पर विचार करते हुए लिखा है-

> "जब हम कहते हैं कि नैतिकता के अध्ययन का सम्बन्ध ऐसे मानव चरित्र से है जो सत्य और मंगल हो, तो इससे हमारा अभिप्राय यह है कि उसका सम्बन्ध इस दृष्टिकोण से होता है कि हमारा व्यवहार (Conduct) किसी ऐसे अन्तिम लक्ष्य या आदर्श के लिए लाभप्रद होता है जो हमारे समक्ष हो और उसका सम्बन्ध उन क़ानूनों और सिद्धान्तों से होता है जिनके मार्गदर्शन में हमारा चरित्र उस अभीष्ट या लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सही दिशा अपनाता है। यूँ तो विभिन्न उद्देश्यों के लिए हम कार्य करते हैं, जैसे मकान बनाना, पुस्तक लेखन आदि, लेकिन नैतिकता में चरित्र का अध्ययन उसके समग्र रूप में (As a whole) ही अपेक्षित है। यह किसी विशिष्ट प्रकार के चरित्र का अध्ययन कदापि नहीं है। यह विभिन्न उद्देश्यों में से किसी एक से विशेष सम्बन्ध नहीं रखता जो उसके समक्ष हो, बल्कि उसका सम्बन्ध उस बड़े और अन्तिम लक्ष्य से है जो हमारे पूरे जीवन के लिए मार्गदर्शन सिद्ध होता है। उस अन्तिम लक्ष्य को सामान्यतः 'परम शिव (Absolute Good)' कहा जाता है।" (A Manual of Ethics p.2)

नैतिकता और आत्मा

दुनिया में सर्वाधिक आदरणीय और मूल्यवान वस्तु वह है जिसे यूनान के लोगों ने नाउस (Nous) या नोएटिक नाउस (Noetic Nous) कहा है। जिसको अरबी भाषा में नफ़्स या "नफ़्से-नातिक़ा" कहते हैं। इसी को भारत में आत्मा कहा गया है। आत्मा का पदार्थ से अलग अपना स्थायी अस्तित्व है। और कई पहलुओं से जगत् में उसे उच्चता प्राप्त है। जगत् में केन्द्रीय महत्व आत्मा का है। जगत् के सम्पूर्ण सौन्दर्य और आकर्षण की चेतना आत्मा के द्वारा होती है। इसी के कारण जगत् में अर्थवत्ता उत्पन्न होती है। सम्पूर्ण जगत् का मूल और सार-तत्व आत्मा ही है। जगत् में जो वस्तुएँ भी दृष्टिगोचर होती हैं वे आत्मा की सम्भावनाओं के सिवा और कुछ नहीं। आत्मा ही वह दीपक है जिसका प्रकाश चतुर्दिक फैला हुआ है। जब वास्तविक परिस्थिति यह है तो स्पष्ट है कि जगत् की कोई भी वस्तु मानव आत्मा की अभीष्ट नहीं हो सकती। आत्मा का अभीष्ट वही होगा जो उससे उच्चतर और महत्तर हो। इसलिए अनिवार्यतः मानवीय आत्मा का अभीष्ट और अन्तिम लक्ष्य एक परम आत्मा (Supreme and Absolute Personality) ही हो सकती है। हम यह स्वीकार कर सकते हैं कि आत्मा प्रत्येक दृष्टि से स्वयं अपना साध्य और अभीष्ट है लेकिन इसमें कुछ ऐसी कठिनाइयाँ हैं जिनका हल सम्भव नहीं। उदाहरणस्वरूप अपने समस्त गुणों और चमत्कारों के बावजूद आत्मा स्वयंभू नहीं, अर्थात ऐसा नहीं है कि कोई उसका स्रष्टा न हो। ऐसा अगर होता तो वह अपने आप में पूर्ण (Perfect in his Personality) होती। उसे स्वयं का पूरा ज्ञान होता, उसके लिए पथभ्रष्ट होने की सम्भावना ही न होती। और उसके पूर्णता को प्राप्त करने का सिरे से कोई प्रश्न ही न उठता।

अगर आत्मा के अभीष्ट लक्ष्य को हम व्यक्तित्वहीन मानें तो इस रूप में वह मानवीय आत्मा की अपेक्षा निम्नतर कोटि की होगी और उसे कोई भी आत्मा का अभीष्ट नहीं मान सकता। इसलिए अनिवार्यतः अपना लक्ष्य और अभीष्ट कोई परम सत्ता (Absolute Personality) ही हो सकती है। और यह वही सत्ता है जिसको दुनिया ईश्वर, अल्लाह या God आदि नामों से जानती

और पहचानती है। ईश्वर ही वास्तव में सभी सत्यों का स्रोत और हमारे अस्तित्व का वास्तविक केन्द्रबिन्दु है। सारांश यह कि एक श्रेष्ठतम नैतिक आदर्श की कल्पना परम सत्ता के बिना सम्भव नहीं और न पारलौकिक जीवन पर ईमान लाए बिना जीवन की निरन्तरता की गुत्थी सुलझती है जिससे नैतिक मूल्यों की उपलब्धि का मार्ग प्रशस्त होता है।

नैतिकता, भौतिकवाद और वैश्विक अर्थवत्तापूर्ण नियम

मानव के लिए किसी ऐसी नैतिक व्यवस्था की अवधारणा, जिसका आधार भौतिकवाद के बजाय वैश्विक अर्थवात्तापूर्ण नियमों पर हो, कोई ऐसी अवधारण नहीं है जिससे हमारा जीवन कोई सामंजस्य न रखता हो। हममें से प्रत्येक व्यक्ति अपने हर सांसारिक मामले में कोई न कोई अर्थवत्तापूर्ण दृष्टिकोण रखने पर मजबूर है। इनसान अचेतन रूप में केवल यान्त्रिक रूप से कोई कार्य नहीं करता। उसके प्रत्येक कार्य के पीछे उसका ज्ञान और संकल्प कार्यरत होता है। परिणामदर्शिता उसका स्वभाव है। विशुद्ध भौतिकवाद के पास इन सवालों का कोई जवाब नहीं है कि कोई व्यक्ति नैतिक नियमों के अनुसार कर्म क्यों करे? अपने निकटतम हित को छोड़कर दूसरों के काम क्यों आए? कमज़ोरों और पीड़ितों के साथ हम सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार क्यों करें? इसमें सन्देह नहीं कि भौतिकवाद के झंडावाहकों में ऐसे लोग भी मिलते हैं जिन्होंने क़ुरबानियाँ दी हैं। दरिद्रों, मोहताजों और मज़लूमों के समर्थन में वे सक्रिय रहे हैं, लेकिन उनकी यह कार्यशैली उनके मौलिक सिद्धान्तों से मेल नहीं खाती। निश्चय ही यह भौतिकता का नहीं भौतिकता से परे किसी और चीज़ का प्रभाव था जो उनके मन के किसी कोने में छिपा रहा है।

मौलिक आवश्यकता

नैतिक मूल्यों की प्राप्ति मानव की मौलिक आवश्यकता है। नैतिकता ही वह मूल्यवान तत्त्व है जिसके द्वारा आध्यात्मिक, भौतिक और सौन्दर्यात्मक मूल्यों में समायोजन और समरसता उत्पन्न की जा सकती है। इसी के द्वारा समाज में पाए जानेवाले अन्तर्विरोध पारस्परिक सामंजस्य में परिवर्तित हो सकते हैं। नैतिकता ही वह शक्ति है जिससे मानव-जीवन उस सत्य के साथ

तारतम्य स्थापित करता है जो परिवर्तनों से परे है। सत्य के साथ जीवन का यही समन्वय और समरसता है जिसको विचारकों ने वास्तविक स्वतन्त्रता और सत्य की उपलब्धि से अभिव्यंजित किया है।

भौतिर्कता या नैतिकता

भौतिकवाद के पक्षधर पदार्थ ही को सब कुछ समझते हैं। उनकी दृष्टि में यहाँ जो कुछ भी है वह मात्र भौतिक पदार्थों का चमत्कार है। उदाहरणस्वरूप कतिपय भौतिकवादियों का मत यह है कि अर्थव्यवस्था की संरचना ही में मानव-जीवन का सम्पूर्ण रहस्य निहित है। धर्म और नैतिकता, सभ्यता और संस्कृति सब आर्थिक परिस्थितियों की पैदावार हैं। वस्तुतः यथार्थ का यह अत्यन्त सतही अध्ययन है। मार्क्स और उसके अनुयायी कम से कम मनोविज्ञान और मानवशास्त्र ही से परिचित होते तो मनोविज्ञान उन्हें बताता कि उत्पादन के साधन मानव-मस्तिष्क की क्रियाओं और प्रविधियों की व्याख्या में सर्वथा असफल हैं। मानव-मन उत्पादन के साधनों को अपने उद्‌देश्य के लिए प्रयोग करता है और उनपर प्रभाव डालता है। मानव विज्ञान उन्हें इस बात से परिचित कराता कि मानवीय आत्मा मात्र भ्रम या भ्रम की निर्मिति नहीं है, बल्कि मानव संस्कृति के उद्‌भव और विकास में वस्तुतः आत्मा ही अपने को व्यक्त करती है। भौतिक साधनों को वही काम में लाती है और उनसे काम लेकर विभिन्न शैलियों की रचना करती है। विभिन्न शैलियों में उसी की अभिव्यक्ति होती है।

स्वयं यह जगत् मात्र उपादेयता (Utility), अर्थात जिससे हमारे भौतिक हित जुड़े होते हैं, को ही व्यक्त कदापि नहीं करता। इस जगत् में दूसरे अन्य ध्यान देने योग्य संकेत भी पाए जाते हैं जो उपयोगिता और उपादेयता से श्रेष्ठतर हैं, जिनकी उपेक्षा करते हुए जगत् की जो भी व्याख्या की जाएगी दोषपूर्ण और ग़लत होगी। जगत् अर्थमय है और जीवन की अपनी अर्थवत्ता है जिसे जानने में भौतिकवाद नितान्त असमर्थ है। जगत् में स्पष्टतया किसी उच्च और श्रेष्ठ सत्ता का ज्ञान और संकल्प कार्यरत प्रतीत होता है। जगत् में किसी के संकल्प और ज्ञान के कार्यरत होने का स्पष्ट अर्थ यह है कि यहाँ

समस्त क्रियाशीलता नैतिकता की है। ज्ञान् और संकल्प की अभिव्यक्ति सदैव नैतिकता के साथ होती है। उदाहरणार्थ आप देखेंगे कि मानव की आवश्यकताओं और जगत् द्वारा उपलब्ध कराई जानेवाली वस्तुओं में अत्यन्त गहरा सम्बन्ध पाया जाता है। शरीर को बनाए रखने के लिए जिन वस्तुओं की आवश्यकता है उन सबको मानव अपने आस पास और बाह्य जगत् में विद्यमान पाता है। ये बहती नदियाँ, जलस्रोत और मैदान, ये विभिन्न प्रकार के वृक्ष और जानवर, ये फल-फूल और खेतियाँ मानव की प्राकृतिक अपेक्षाओं और आवश्यकताओं के उत्तर हैं। इन्हें स्रष्टा की अनुकम्पा के सिवा किसी और चीज़ से अभिव्यंजित नहीं किया जा सकता। ये चीज़ें, जिन्हें हम अपने चतुर्दिक देखते हैं, वास्तव में ईश्वरीय स्वभाव ही के जीवन्त प्रतीक हैं। यह इस बात का खुला प्रमाण है कि जगत् में वास्तव में भौतिकता नहीं बल्कि नैतिकता कार्यरत है।

नैतिक कार्यशीलता की इससे भी ज़्यादा साफ़ और स्पष्ट तस्वीरें मौजूद हैं लेकिन मानव उनकी ओर बहुत कम ध्यान देता है। आप जानते हैं कि बच्चे के पालन-पोषण में वास्तविक भूमिका माता-पिता या सगे-सम्बन्धियों के उस वात्सल्य और प्रेम की होती है जो उन्हें बच्चे से होता है। यह नैतिकता का चमत्कार है न कि विशुद्ध भौतिकता का। इसी प्रकार हम देखते हैं कि एक ओर अगर हमें सौन्दर्यबोध प्रदान किया गया है तो दूसरी ओर जगत् की प्रत्येक वस्तु में सौन्दर्य पाया जाता है। इसे मात्र भौतिक तत्वों की करामात ठहराना और इसी पर सन्तुष्ट होकर रहना बौद्धिक और वैचारिक आत्महत्या के अतिरिक्त और कुछ नहीं। मार्क्स और दूसरे भौतिकवादी इस तथ्य को समझने में असमर्थ हैं कि जीवन को जड़ और भौतिक पदार्थों पर श्रेष्ठता प्राप्त है। एक श्रेष्ठतर वस्तु अपने से निम्नतर के अधीन कैसे हो सकती है। जीवन चेतना और अनुभूतियों से भरी एक आबाद दुनिया है जिसका स्रोत कोई चैतन्य और परम सत्ता ही हो सकती है, और केवल वही सत्ता जीवन का अभीष्ट और अभिप्राय हो सकती है। ईश्वर को अपने जीवन से विलग करके न केवल यह कि मानव ईश्वर के अधिकारों को नज़रअन्दाज़ कर देता है बल्कि उसकी यह नीति स्वयं उसके अपने विरुद्ध भी है, क्योंकि इस प्रकार

वह अपनी हैसियत को गिरा देता है। इस बात को एक मिसाल के द्वारा समझा जा सकता है। हमारे शरीर के समस्त अवयव हाथ, पैर आदि देखने में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं किन्तु सत्य यह है कि इनकी हैसियत जो कुछ है वह हमारे व्यक्तित्व के सापेक्ष है। अगर हमारे हाथ और पैर हमारे व्यक्तित्व के अधीन न हों तो उनका अस्तित्व निरर्थक होकर रह जाए। शारीरिक व्यवस्था में केन्द्रीय महत्व हमारे व्यक्तित्व को प्राप्त है। इसलिए हमारे समस्त अवयव अपनी हैसियत को बनाए रखने के लिए प्रति क्षण हम पर निर्भर करते हैं। ठीक इसी प्रकार हमारी वास्तविक हैसियत का निर्धारण ईश्वर की ओर से होता है। इस सम्बन्ध और सम्पर्क के बिना हमारी हालत ऐसे हाथ-पैर की रह जाती है जिनको शरीर से काटकर फेंक दिया गया हो। ऐसे कटे हुए हाथ-पैर और मिट्टी के ढेर में कोई मौलिक अन्तर शेष नहीं रहता। मानव यह तो समझता है कि हाथ या पैर का शरीर से कटकर अलग होना उसके लिए घातक है किन्तु अपनी दृष्टिहीनता के कारण वह उस घातक परस्थिति को महसूस करने में सामान्यतः असमर्थ रहता है जिसमें वह ईश्वर से अलग होकर जा पड़ता है।

नैतिकता बोझ नहीं

नैतिकता मानव के लिए कोई अप्रिय बोझ क़दापि नहीं है। रंग और सुगन्ध फूलों पर बोझ नहीं। परिन्दों के पंख परिन्दों के लिए कभी भार नहीं होते, बल्कि ये पर उनकी शोभा भी हैं और उड़ान में उनके सहायक भी। यही हाल फूलों के रंग और गन्ध और आँखों की पलकों का भी है। मानव जीवन में भी वास्तविक सौन्दर्य नैतिकता ही से उत्पन्न होता है। नैतिकता से वंचित हो जाने के बाद मानव के पास कोई मूल्यवान वस्तु शेष नहीं रहती। नैतिक अपेक्षाएँ हमारी प्रकृति और स्वभाव को ही दर्शाती हैं।

नैतिकता वास्तव में एक वैश्विक और व्यापक नियम का नाम है। वही हमारे आन्तरिक जीवन का भी नियम है। नैतिकता ही है जिसके द्वारा मानव के आन्तरिक जीवन में सन्तुलन और उसके व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में सामंजस्य और एकात्मता उत्पन्न हो सकती है। यही वह वैश्विक नियम है

जिसे हम जगत् की व्यवस्था में भी देखते हैं । जगत् की समस्त वस्तुएँ एक सही और स्वाभाविक नियम के अधीन हैं जिसके पीछे ईश्वर का संकल्प क्रियाशील है। इसे स्वीकार करने पर आज बड़े-से-बड़े चिन्तक अपने को विवश पा रहे हैं। उन्हें यह मानना पड़ा है कि यह जगत् किसी मशीन के बजाय मन से अधिक सादृश्यता रखता है।

इसमें सन्देह नहीं कि भौतिक जीवन-दर्शन उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप में अपने यौवन पर था। किन्तु बीसवीं शताब्दी में स्वयं यूरोप के कितने ही विचारकों और वैज्ञानिकों को नए अनुसन्धानों और शोधकार्यों के पश्चात अपनी धारणा को बदलना पड़ा है। जे.एस.हाल्डेन ने लिखा है कि जीवन की समस्या को भौतिक और रासायनिक समस्या समझना ग़लत है। जीवन और मानव व्यक्तित्व (Personality) का अस्तित्व इस बात का प्रमाण है कि विश्व की मात्र भौतिक व्याख्या सम्भव नहीं। (Prof. J.S. Haldane in "The Philosophical Basis of Biology")

विज्ञान ने अब हमें ऐसे स्थान पर ला खड़ा किया है जहाँ बड़े-बड़े वैज्ञानिक यह स्वीकार करने लगे हैं कि विश्व में जो कुछ भी दिखाई देता है वह वस्तु (Thing) सिरे से है ही नहीं, बल्कि केवल कार्य है या घटनाओं (Events) का भवन है (Quoted by Iqbal in his Lectures)। इससे इस बात को अतिरिक्त बल मिलता है कि यह जगत् अन्धे बहरे भौतिक पदार्थ की संरचना नहीं बल्कि इसका अस्तित्व-स्रोत कोई मन और संकल्प है। दूसरे शब्दों में जगत् ईश्वरीय रचनाकर्म की अभिव्यक्ति है। मानव का दायित्व है कि वह अपने संकल्प और कर्म-स्वातन्त्र्य की दुनिया में अपने प्रभु का आज्ञापालन करे। कुरआन में कहा गया है -

"निश्चय ही मेरा प्रभु सीधे रास्ते पर है।" (कुरआन, 11:56)

मतलब यह है कि ईश्वर का कोई कार्य न्याय, तत्वदर्शिता और सत्य के विरुद्ध नहीं हो सकता। उसने सत्य और शिवम् (Good) के अन्तर्गत जगत् की रचना की है। हमें संकल्प और कर्म-स्वातन्त्र्य प्रदान करने से भी जो चीज़ अभीष्ट है वह सत्य और शुभ के सिवा कुछ और नहीं हो सकती। मानव का कल्याण और उसकी सफलता उसके अंतःकरण की शुद्धि पर निर्भर करती है।

(बाह्य)और(अन्तर) को "ख़ुल्क़" (Creation) और "ख़ुल्क़" (शील) से अभिव्यंजित किया जाता है। कहते हैं "फ़ुलानुन हुस्नुल ख़ुल्क़ वल ख़ुल्क़" अर्थात "अमुक का अन्तर भी अच्छा है और बाह्य भी।" बाह्य को यदि हम आँख से देखते हैं तो-अन्तर या आत्मा का बोध अन्तर्दृष्टि के द्वारा होता है। बाह्य हो या अन्तर हरेक का अपना एक विशिष्ट रूप और आकार होता है। यह रूप और आकार अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी। ख़ुल्क़ (शील) या मन की रूपाकारिक सुदृढ़ता ही है जिससे कर्मों का संचालन होता है। अगर हमसे अच्छे कर्म होते हैं तो यह इस बात का संकेत है कि हमारा अन्तर्मन अच्छा है। इसी को सुशीलता से अभिव्यंजित करते हैं। मनुष्य के स्वभाव, प्रवृत्तियों और अभिरुचियों से उसके आन्तरिक रूपाकार का भली-भाँति अनुमान किया जा सकता है। किसी की प्रवृत्ति और अभिरुचि को उसके चरित्र और व्यक्तित्व से अलग नहीं किया जा सकता। रस्किन (Ruskin) ने ग़लत नहीं, कहा है कि अभिरुचि वास्तव में नैतिकता का कोई अंग या शाखा नहीं बल्कि स्वयं अभिरुचि ही नैतिकता है। किसी को जाँचने के लिए पहला और अन्तिम सवाल जो उससे कर सकते हैं वह यही है कि उसे क्या पसन्द है? आदमी की पसन्द और नापसन्द से यह भेद खुल जाता है कि स्वयं वह आदमी क्या है।

नैतिकता के अध्ययन में सत्य, सुन्दर और शिव (Truth, Beauty and Goodness) को मौलिक महत्व दिया जाता है। इनका सम्बन्ध वास्तव में हमारे ज्ञान, अनुभव और कर्म से है। अगर आदमी सत्य के अनुसन्धान में असफल रहा तो वास्तव में वह सत्यज्ञान (True Knowledge) से वंचित है। उसका जीवन अगर एक सौन्दर्यानुभव में न ढल सका तो उसके एहसास (Feeling) की दुनिया वीरान ही रही। इसी प्रकार अगर वह शिवम् को समझने में सफल न हो सका तो व्यावहारिक रूप से वह सर्वथा घाटे में रहा।

मानव का यह स्वभाव है कि वह जानना चाहता है कि सत्य और यथार्थ (Reality) क्या है? वह उन वस्तुओं को महत्व देता है जिनमें सौन्दर्य और गुणवत्ता हो। इसी प्रकार वह उस कर्म को अपनाना चाहता है जिसमें शिवम् निहित हो। साधारण अध्ययन में केवल मानव व्यवहार का अध्ययन ही नैतिकता के अन्तर्गत किया जाता है। सत्य की उपलब्धि को दर्शन का विषय

निश्चित किया गया है। और सौन्दर्य और गुणवत्ता को सौन्दर्यशास्त्र (Aesthetics) के तहत रखा गया है। लेकिन जीवन के इन तीनों मूल्यों में इतना गहन सम्बन्ध है कि एक को दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। उदाहरणार्थ सत्कर्म को ज्ञान से अलग नहीं कर सकते। जो कर्म ज्ञान के अनुसार न हो वह पथभ्रष्टता है। सुक़रात ने कहा है :

"Virtue is a kind of knowledge."

"सत्कर्म ज्ञान ही का एक प्रकार है।"

सुक़रात का अभिप्राय यह है कि नैतिक दायित्वों के परिणाम अगर हम पर पूर्णरूपेण स्पष्ट हों तो अनिवार्यतः हम उनकी उपेक्षा नहीं कर सकते। अनुचित नीति स्वयं अपने विरुद्ध एक अनुचित प्रयास है। अपने विरुद्ध कोई क़दम उठाकर कोई अपनी सुरक्षा के दायित्व का निर्वाह कैसे कर सकता है।

नैतिकता और सौन्दर्य

नैतिकता से सौन्दर्यबोध को भी अलग नहीं कर सकते। अरस्तू (Aristotle) के दृष्टिकोण के अनुसार नैतिक जीवन स्वयं उसके अपने सौन्दर्य के कारण ही स्वीकार्य होता है -

Only Beauty is good.

"सौन्दर्य ही शुभ है।"

सौन्दर्य का सम्बन्ध मात्र शरीर से ही नहीं है। नैतिक दृष्टि से भी कुछ चीज़ें सुन्दर (Morally Excellent) होती हैं। कांट (Kant) के शब्दों में वे हीरे की तरह स्वयं अपनी रौशनी से चमक रही होती हैं। वे उस वस्तु की तरह होती हैं जिसका मूल्य स्वयं उसके अपने अस्तित्व से स्थापित होता है।

नैतिकता और आनन्द

आनन्द (Pleasure) का भी नैतिकता से गहरा रिश्ता होता है। सही कार्यशैली से सच्ची प्रसन्नता प्राप्त होती है। यह प्रसन्नता मात्र आध्यात्मिक नहीं होती बल्कि बौद्धिक और हार्दिक होती है और साथ ही साथ सौन्दर्यबोध से भी इसका सम्बन्ध होता है। इसी लिए कहा गया है

"Virtue is its own reward and vice is its own punishment."

"सत्कर्म अपना प्रतिदान स्वयं है और अपकर्म अपना दंड स्वयं है।"

नैतिकता और मनुष्य की पूर्णता

नैतिकता ही के द्वारा मनुष्य की पूर्णता सम्भव है। पूर्णता की उपलब्धि नैतिकता के बिना असम्भव है। ये और इस प्रकार के विचार जिन्हें विभिन्न विचारकों ने प्रस्तुत किया है इनके द्वारा वास्तव में जीवन ही के विभिन्न पहलुओं और मूल्यों को उजागर करने का प्रयास किया गया है। नैतिकता के द्वारा जीवन का निर्माण होता है। नैतिकता जीवन को एक स्वरूप (Form) देती है। नैतिक मूल्यों का आदर जीवन के समस्त क्षेत्रों में अपेक्षित है।

नैतिकता में दार्शनिकों ने अपना प्रमुख दायित्व यह समझा है कि वे जीवन के परम लक्ष्य की खोज करें। प्लेटो और अरस्तू से लेकर स्पीनोज़ा, कांट, हीगल और ग्रीन तक सभी ने इस सम्बन्ध में अपने दायित्व के निर्वाह का प्रयास किया है। परम लक्ष्य के निर्धारण के बाद मानव का दायित्व स्वतः निर्धारित हो जाता है और इसकी अनिवार्यता अपने आप ही सिद्ध हो जाती है। इसी परम लक्ष्य के सन्दर्भ में मानव का पूरा जीवन अपना एक स्वरूप और आकार ग्रहण कर लेता है। चिन्तकों को उनके प्रयास ने यहाँ तक पहुँचा दिया है कि वे यह मानने पर बाध्य हुए हैं कि जीवन के परम लक्ष्य (Ultimate Goal) का मानव के वर्तमान जीवन से इतना निकट का सम्बन्ध है कि वर्तमान जीवन और अस्तित्व को उससे अलग करके नहीं देखा जा सकता। जीवन उसी में प्रविष्ट और सम्मिलित है। नीतिशास्त्र के दार्शनिकों का काम केवल यह है कि वे इस तथ्य को इस सीमा तक स्पष्ट और लोगों की दृष्टि में इतना उजागर कर दें कि साधारण मानवीय चेतना भी इसे ग्रहण कर सके।

जहाँ तक विधि-विधान या क़ानून की बात है तो इस विषय में यह स्वीकार किया गया है कि नैतिकता और चरित्र का स्तर जब उच्च हो जाता है तो नैतिक नियम और सिद्धान्त मानव के लिए अजनबी नहीं रहते, बल्कि वे उसकी अपनी ही चेतना और अनुभूति का एक मूर्त रूप सिद्ध होते हैं।

आदमी जिस चीज़ को अपने दिल की गहराई में पा रहा हो उसे धारण करने के लिए किसी बाह्य नियम और सिद्धान्त के दबाव की आवश्यकता नहीं रहती। ऐसे क़ानूनों और सिद्धान्तों के पालन का अर्थ इसके सिवा और कुछ नहीं कि आदमी स्वयं अपने साथ विश्वासघात न करे, वह स्वयं अपने लिए सच्चा हो।

To Thine Yourself Be true.

"तुम अपने प्रति सच्चे बनो।"

नैतिक नियमों का विरोध स्वयं अपना विरोध है।

नैतिकता और मानव-समाज

मानव समाज से आदमी का गहरा सम्बन्ध होता है। वह अपने समाज का एक अंग होता है। विभिन्न व्यक्तियों से मिलकर समाज का निर्माण होता है। आदर्श व्यक्तित्व की पूर्ण अभिव्यक्ति समाज के माध्यम से ही सम्भव है। इसलिए सामाजिक दायित्वों को मानवीय नैतिकता से अलग करके नहीं देखा जा सकता। नैतिकता की सर्वश्रेष्ठ और पूर्ण धारणा वही है जिसमें मानव के व्यक्तिगत और सामूहिक कल्याण का रहस्य निहित हो, जिससे कठिनाइयाँ सरल होती हों, उलझी हुई समस्याओं का अन्त हो जाता हो और हमारे मन-मस्तिष्क को शान्ति और आनन्द प्राप्त होता हो और जिसके द्वारा धरती अत्याचार और उपद्रव से मुक्त होती हो। ब्रिफ़ो (Briffaultt) का ध्यान इस ओर गया है। वह कहता है -

> "आदर्श नैतिकता का कैसा ही भव्य भवन आप निर्मित कर लें, अगर वह असत्य को मिटा कर उसकी जगह सत्य को स्थापित करने में असमर्थ है तो वह निरर्थक चीज़ है। इस बाह्य भवन को नैतिकता का भवन नहीं कहा जा सकता।"
>
> (The Making of Humanity)

नैतिकता और धर्म

नैतिकता के महत्व और उसके विभिन्न पक्षों की चर्चा के बाद यह प्रश्न शेष

रहता है कि मानव अपनी आचार-संहिता और नैतिक व्यवस्था के लिए ऐसे स्पष्ट नियम और क़ानून कहाँ से प्राप्त करे जिनका पालन सबके लिए अनिवार्य हो, जिसके सत्य और श्रेष्ठ नैतिक व्यवस्था होने में किसी को सन्देह न हो सके। मानव-विज्ञानों में नियमबद्धता सुस्पष्ट नियमों के बिना सम्भव नहीं और न इसके बिना मानव विचार को विक्षिप्तता और बिखराव से बचाया जा सकता है।

इस प्रश्न का सही उत्तर केवल धर्म के पास है। मानव विचार के सामने नैतिकता की प्राकृतिक माँगें तो उभर सकती हैं किन्तु धर्म के सहयोग के बिना परिपूर्ण और विश्वासयोग्य आचार-संहिता देने में वह सर्वथा असमर्थ है। धर्म के अतिरिक्त दूसरे स्रोत चाहे वे मनोविज्ञान और अन्तःप्रवृत्तियाँ हों या अनुभव और अनुभूतियाँ, ये मूल स्रोत के केवल सहायक हो सकते हैं। इन्हें मूल स्रोत की हैसियत प्राप्त नहीं हो सकती। मात्र आंशिक सत्यों के ज्ञान से एक सर्वोच्च और सुदृढ़ नैतिक व्यवस्था की रचना क कैसे सम्भव हो सकती है? एक निश्चित और अनिवार्यतः पालनयोग्य क़ानून की आवश्यकता का एहसास तो कांट (Kant) को भी हुआ है लेकिन वह इसकी कोई स्पष्ट व्याख्या करने में असमर्थ दिखाई देता है।

नैतिकता के विषय में भलाई और बुराई या शुभ और अशुभ की सत्य धारणा का प्रश्न सामने आता है। किन्तु इसके हल करने में हमारा आनुभविक और अन्तःपरक ज्ञान अपर्याप्त सिद्ध होता है। बुद्धि इस सम्बन्ध में दूर तक हमारा साथ नहीं देती। नैतिकता की पृष्ठपोषक शक्ति और प्रेरणाओं के बारे में मानव विचार और चिन्तन ने जो चीज़ें प्रस्तावित की हैं उन्हें नकारा नहीं जा सकता, किन्तु धर्म का मार्गदर्शन न हो तो इन चीज़ों की हैसियत स्पष्ट नहीं होती और न इन्हें कोई सुदृढ़ आधार प्राप्त होता है।

इस सम्बन्ध मे जब हम इस्लाम का अध्ययन करते हैं, जो पूर्ण, प्रामाणिक और ईश्वर-प्रदत्त अन्तिम धर्म है, तो हमें उन सारे ही प्रश्नों का समुचित और सन्तोषजनक उत्तर मिल जाता है जो नैतिकता के अध्ययन में उभरकर हमारे सामने आते हैं। यहाँ हमें शुभ और अशुभ, नेक और बद, सही और ग़लत का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त होता है। यहाँ स्पष्ट शब्दों में बता दिया गया

है कि ज्ञान का मूल स्रोत ईश्वरीय ग्रन्थ और उसका मार्गदर्शन है। ईश्वर ने जो नैतिक नियम प्रदान किए हैं उनके अनिवार्यतः पालनीय होने के लिए यही आधार पर्याप्त है कि वे ईश्वर की ओर से हैं। मानव के लिए जो परम लक्ष्य अपेक्षित है वह ईश्वर और उसकी प्रसन्नता के अतिरिक्त कोई दूसरी चीज़ नहीं हो सकती। ईश्वरीय सत्ता ही वह परम आत्मा और पूर्ण सत्ता है जिसे मानव का अन्तिम लक्ष्य और आश्रय कहा जा सकता है। अगर ईश्वरीय सत्ता के अतिरिक्त किसी और चीज़ को हम जीवन और जगत् का अभिप्राय और प्रयोजन बताते हैं तो यह सत्य के प्रतिकूल और मानव पर अत्याचार होगा। जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि मानव को दूसरी समस्त चीज़ों के मुक़ाबले में श्रेष्ठता और उच्चता प्राप्त है इसलिए उसका अभीष्ट कोई ऐसी चीज़ कदापि नहीं हो सकती जो व्यक्तित्व (Personality) के गुण से रहित हो। इसलिए अनिवार्यतः मानवीय अनुभवों और भावनाओं और उसके प्रयासों की दिशा ईश्वर ही की ओर होनी चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि तारे आसमान में देर तक चमकते हैं। चाँद हमारी अन्धेरी रातों को रौशन कर देता है और सूर्य से प्रकाश और ऊष्मा प्राप्त होती है, किन्तु हमारे अन्तर के लिए इनके पास कोई प्रकाश नहीं है और न हमारे दिल की गहराइयों में छिपी उमंगों के लिए इनके पास कोई गर्मी है। जगत् में जो भी है ईश्वर पर आश्रित और उसका मोहताज है। इसलिए उसके सिवा कोई नहीं जो हमारे जीवन और हमारे प्रयासों का केन्द्र बिन्दु बन सके।

मानव के लिए स्पष्ट कल्याण और भलाई की बात यह है कि वह उस परीक्षा में सफल हो जिससे वह दुनिया में दोचार है। जो नीति इस कल्याण को पाने में सहायक हो वही सही है और जो नीति इस कल्याण की प्राप्ति में सहायक न हो सके, बल्कि इस मार्ग में रुकावट बने, वह ग़लत है। ईश्वरीय मार्गदर्शन ही ज्ञान का वास्तविक स्रोत है। ईश्वर का प्रेम, उसकी प्रसन्नता और रज़ामन्दी की चाह और उसकी अप्रसन्नता और नाराज़गी से बचने की चिन्ता, नैतिक व्यवहार की पाबन्दियों और अनैतिकता से बचने के लिए मूल प्रेरक है। ईशज्ञानी व्यक्तियों से मिलकर जो समाज और कल्याणकारी राज्य अस्तित्व में आता है, जिसका निर्माण ईश्वरप्रदत्त क़ानूनों की रौशनी में होता

है, उसके अन्दर स्वयं ईश्वरीय नैतिक व्यवस्था की स्थापना की क्षमता होती है। फिर क़ानून के पालन के लिए दायित्वबोध भी पूर्णतया कार्यरत हो उठता है और सत्य से प्रेम और असत्य से घृणा की भावना भी इस सम्बन्ध में एक प्रेरक है।

इस्लाम आंशिक सच्चाइयों का निषेध नहीं करता। वे सभी इस्लाम की नैतिक व्यवस्था में निहित दिखाई देती हैं। वे विच्छिन्न अंशों के रूप में या अपूर्ण दशा में मौजूद हों, इसके बजाय इस्लाम उनके लिए सुदृढ़ आधार उपलब्ध करता है। इस्लाम पूर्णत्व प्राप्ति की इच्छा का, जिसे मानव विचार और चिन्तन की दृष्टि में एक नैतिक प्रेरक की हैसियत प्राप्त है, निषेध नहीं करता। बल्कि इस्लाम ने इसके महत्व की पुष्टि की है। क़ुरआन में है -

> "तसबीह (महिमागान) करो अपने सर्वोच्च रब के नाम की जिसने पैदा किया, फिर ठीक-ठाक किया, जिसने निर्धारित किया, फिर मार्ग दिखाया, जिसने वनस्पति उगाई, उसे ख़ूब घना और हरा-भरा कर दिया।" (क़ुरआन , 87:1-5)

मतलब यह है कि ईश्वर ने पैदा ही नहीं किया, उत्कृष्ट संरचना भी प्रदान की। फिर उसने उत्कृष्ट संरचना और प्राकृतिक सौन्दर्य ही नहीं प्रदान किया बल्कि परम लक्ष्य की ओर भी मार्गदर्शन किया। हम देखते हैं कि वह धरती में हरियाली और घास उगाता है और उसमें जो गुण छिपे होते हैं उन्हें उभारने और विकसित करने की व्यवस्था भी करता है। यहाँ तक कि हम देखते हैं कि नन्हे-नन्हे अंकुर बढ़कर अत्यन्त घने, हरे-भरे और मनोरम वृक्ष हो जाते हैं। इस क़ानून से इनसान का जीवन अलग नहीं है। ईश्वर ने इनसान को केवल जीवन ही नहीं प्रदान किया बल्कि जीवन देकर जीवनोद्देश्य का भी ज्ञान दिया। वह मानव का उस मार्ग की ओर मार्गदर्शन करता है जिसपर चलकर वह अपने वास्तविक जीवनोद्देश्य को पा सकता है और अपने जीवन को पूर्णत्व तक ले जा सकता है। इस्लाम हमारे जीवन के सूक्ष्म और कोमल पक्षों का संरक्षक ही नहीं है बल्कि वह उन्हें उत्कृष्टता के चरम तक ले जाना चाहता है।

मानव का सबसे बड़ा अपराध यह है कि वह अपने आप को पामाल कर दे और उसे पूर्णता से वंचित रखे। क़ुरआन में है -

"सफल हो गया वह जिसने उसे (अपने व्यक्तित्व को) विकसित किया। और असफल हुआ वह जिसने उसे दबा दिया।"

(क़ुरआन,91:9,10)

पूर्णत्व वास्तव में अपने प्रभु की ओर बढ़ने ही पर निर्भर करता है। ईश्वर की उपेक्षा करके मनुष्य पस्ती में गिर जाता है और सफलता के ऊँचे दर्जे पर पहुँचने में असमर्थ रहता है। इस्लाम ने इसे पूर्णतया स्पष्ट कर दिया है कि मानव अपने पूर्णत्व के लिए सांसारिक परीक्षा के इस चरण में कौन सी नीति अपनाए। इस सम्बन्ध में इस्लाम ने जो शिक्षा दी है उससे व्यक्ति ही नहीं, समाज, समुदाय और पूरी मानवता उन्नति की ओर बढ़ सकती है और लोग एक-दूसरे के पूर्णत्व में रुकावट होने के बजाय सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

यहाँ उस आनन्द (Pleasure) का भी निषेध नहीं किया गया है जिसका उल्लेख आचारशास्त्र के चिन्तकों के यहाँ मिलता है। लेकिन इसके साथ इसे भी स्पष्ट कर दिया गया है कि ईश्वरीय प्रसन्नता की चाह और उसके लिए प्रयास और उसके दिए हुए क़ानून का पालन स्वयं सर्वाधिक आनन्द का विषय है। इस्लाम मन-मस्तिष्क और हृदय की आवश्यकताओं की उपेक्षा नहीं करता बल्कि वह मानव की समस्त भावनाओं और उसकी इच्छाओं का आदर करता है, शर्त यह है कि वे भावनाएँ और इच्छाएँ स्वाभाविक और ईश्वरीय आदेशों के अन्तर्गत हों। नैतिक दायित्वों के निर्वाह में जो प्रसन्नता होती है उसे तो इस्लाम ने दीन और ईमान का लक्षण कहा है। अतएव अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा है -

"जब तुम्हें अच्छे काम से प्रसन्नता हो और बुरे काम से दुख और क्षोभ हो तो तुम मोमिन हो।" (हदीसः अहमद)

आनन्द चाहे मानसिक हो या आध्यात्मिक और सौन्दर्यबोध से सम्बन्धित, अगर उस आनन्द और धार्मिक मूल्यों के मध्य कोई टकराव न हो

तो वह मान्य है। इस्लामी जीवन व्यवस्था में भी इसका पूरा ध्यान रखा गया है कि व्यक्ति की प्रसन्नता और समाज और सम्पूर्ण मानवता के आनन्द के मध्य कोई विरोध और विसंगति न उत्पन्न हो।

वास्तविक ज्ञान

ईश्वरीय मार्गदर्शन के द्वारा हमें जो ज्ञान प्राप्त होता है वही वास्तविक ज्ञान है। दूसरी ज्ञान-शाखाएँ चाहे वे आनुभविक हों या अन्तर-परक, उनकी हैसियत मूल ज्ञान के साक्ष्यों की है। नैतिकता का अध्ययन हमें बताता है कि जीवन के नियम, बुद्धि और अन्तर्ज्ञान और मानव के अनुभव, ये सब ईश्वरीय मार्गदर्शन के सत्य और कल्याणप्रद होने के साक्षी हैं। मूल मानदण्ड ईश्वरीय मार्गदर्शन है। दार्शनिकों और तत्वदर्शियों द्वारा प्रस्तावित चीज़ों का इससे निषेध नहीं होता, बल्कि इससे उनका सुधार होता है और वे पूर्ण भी होती हैं। उनमें से यदि कोई अमर्यादित हो गई है तो ईश्वरप्रदत्त मार्गदर्शन में उसे एक समुचित व्यवस्था के अन्दर उसके अपने ठीक स्थान पर रखा गया है।

यह विचार सर्वथा असत्य है कि इस्लाम में नैतिकता केवल स्वर्ग और नरक की धारणा पर निर्भर करती है। स्वर्ग और नरक की धारणा नैतिकता का मूलाधार नहीं बल्कि यह नैतिकता की अन्तिम परिणति है। इस बात को एक मिसाल से समझा जा सकता है। अगर किसी से कहा जाए कि किसी का माल हड़प करोगे तो जेल जाना पड़ेगा तो क्या इसका अर्थ यह होगा कि इस काम की बुराई कारावास पर निर्भर करती है। स्वयं इस काम में कोई बुराई नहीं? इसी तरह अगर किसी से कहा जाए कि सच्चाई अपनानेवाले को समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त होती है तो क्या इसका यह अर्थ लेना सही हो सकता है कि सच्चाई का आधार प्रतिष्ठा की प्राप्ति है, सच्चाई अपने अन्दर कोई मूल्य और महत्व नहीं रखती?

क़ुरआन ने भलाई और बुराई की ऐसी धारणा प्रस्तुत की है जिसकी उच्चता की कल्पना भी साधारण मन नहीं कर सकता। क़ुरआन भलाई को मारूफ़ कहता है अर्थात उसकी दृष्टि में भलाई वह है जिससे मानव की प्रकृति भलीभाँति परिचित है, जो उसके स्वभाव के ठीक अनुकूल है, जिसे वह

पहचानती है। बुराई को क़ुरआन मुनकर कहता है। अर्थात बुराई उसकी दृष्टि में वह है जिसे मानव स्वभाव नकारता है, जो मानव-प्रकृति के लिए अपरिचित है, जिसको वह जानता नहीं। इसका अर्थ यह हुआ कि इस्लाम में भलाई और बुराई का आधार मानव-प्रकृति और स्वभाव है। उसकी दृष्टि में अच्छाई यह है कि प्रकृति के अनुरूप ठीक-ठीक चला जाए। अभीष्ट यह है कि आदमी उन्नति करके उस उच्च स्थान को प्राप्त कर ले जहाँ धर्म की कोई चीज़ उसकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ नज़र न आए। सब कुछ उसकी अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ हो। स्वर्ग के बारे में क़ुरआन में कहा गया है -

> "तुम्हारे लिए वहाँ सभी कुछ है जो तुम्हारा जी चाहे, और वहाँ तुम्हारे लिए वह सभी कुछ है जिसकी इच्छा तुम्हारे अन्दर हो।"
>
> (क़ुरआन, 41:31)

इस्लामी दृष्टिकोण से प्रकृति के विरुद्ध आचरण करने का नाम बुराई है और इसका अंजाम यह होता है कि मनुष्य पतन और विघटन के उस स्थल तक पहुँच जाता है जहाँ कोई चीज़ प्रिय और वांछित न पाई जाए। जो कुछ भी हो उसकी मरज़ी के प्रतिकूल हो। नरक एक ऐसा ही स्थान है जिस तक आदमी को उसकी नैतिक गिरावट ही पहुँचाती है। इससे मालूम हुआ कि नैतिकता का मूलाधार मानव का अपनी प्रकृति को पहचानना और उसके अनुरूप आचरण करना है। नैतिकता कोई बाहरी चीज़ नहीं बल्कि वह मानव प्रकृति और स्वभाव की सही अभिव्यक्ति है। मानव अगर अपनी वास्तविक भावनाओं और अनुभूतियों को पहचान ले तो नैतिक अनिवार्यताएँ उसके अपने दिल की उमंगों से भिन्न कोई चीज़ नहीं हैं। जब तक मानव अपनी वास्तविक प्रकृति से परिचित नहीं होता वह बुराई से चाहे बच भी जाए मगर उसके दिल और दिमाग़ पूर्ववत गुनाहगार रहेंगे।

जैसा व्यक्तित्व वैसा ही कर्म

आदमी का जैसा व्यक्तित्व होता है उससे कर्म भी वैसे ही होते हैं। किसी कर्म के पीछे केवल नैसर्गिक प्रेरणाएँ (Motives) ही कार्यरत नहीं होतीं बल्कि उसमें उसका मन-मस्तिष्क, विचार और बुद्धि भी कार्य करती है।

उसके पीछे उसके आदर्श और जीवनोद्देश्य का भी हाथ होता है जिसे वह चेतन या अचेतन रूप से अपनाए हुए होता है। इस दृष्टि से व्यक्ति का चरित्र और नैतिकता उसके जीवन का कुछ भाग, या एम. आर्नल्ड (Mathew Arnold) के अनुसार तीन चौथाई ही नहीं होता बल्कि स्वाभाविक रूप से वह उसके सम्पूर्ण ज़ीवन पर छाया हुआ होता है।

इस्लामी दृष्टिकोण से परोक्ष की कुछ ऐसी चीज़ें भी नैतिकता के लिए प्रेरकों का काम करती हैं जिनका एहसास आम लोगों को नहीं होता। आदमी जब अपने जीवन और परोक्ष के विस्तृत लोक के मध्य, जो यथार्थ जगत् है, अनुकूलता पैदा कर लेता है तो ईश्वर की ओर से उसे सहयोग और सहायता प्राप्त होने लगती है। उसे ज्ञान और तत्वदर्शिता प्रदान की जाती है। उसे पारितोष और शान्ति प्राप्त होती है। फ़रिश्ते भी उसके हृदय में अच्छे विचारों और भावों को डालने लगते हैं और वह महसूस करने लगता है कि ईश्वर की एक उच्चतम और पवित्र मख़लूक़ (सृष्टजीव) का संग-साथ भी उसे प्राप्त है।

नैतिकता की अभिव्यक्ति

मानव जीवन में नैतिकता की सुस्पष्ट अभिव्यक्ति हक़ अदा करने के रूप में होती है। नैतिक दृष्टिकोण से मानव पर सबसे पहला और सबसे बड़ा हक़ और अधिकार उसके सृष्टिकर्ता और पालनकर्ता प्रभु का है। ईश्वर के हक़ को अदा करने में उसकी उपासना, पूजा, आज्ञापालन आदि सारी बातें सम्मिलित हैं। ईश्वर के बाद उसके बन्दों के हक़ हैं जिनसे उसके विभिन्न प्रकार के सम्बन्ध होते हैं। ईश्वर के बन्दों में सर्वाधिक सुस्पष्ट हक़ माता-पिता का होता है, क्योंकि माता-पिता से मानव का सम्बन्ध अत्यन्त क़रीबी और गहरा होता है। फिर क्रमिक रूप से दूसरे लोगों के हक़ सामने आते हैं। इस सम्बन्ध में कुछ विवरण क़ुरआन की इस आयत में मिलते हैं -

> "अल्लाह की बन्दगी करो और उसके साथ किसी को साझी न बनाओ। और अच्छा व्यवहार करो, माता-पिता के साथ, नातेदारों, अनाथों और मोहताजों के साथ, नातेदार पड़ोसियों के साथ और अपरिचित पड़ोसियों के साथ और साथ रहनेवाले व्यक्ति के साथ

और मुसाफ़िर के साथ और उनके साथ भी जो तुम्हारे क़ब्ज़े में हों। अल्लाह ऐसे व्यक्ति को पसन्द नहीं करता जो इतराता और डींगे मारता हो।" (क़ुरआन,4:36)

इस आयत में माता-पिता, नातेदारों और दूसरों के साथ सद्व्यवहार का आदेश देते हुए ईश्वर की बन्दगी का आदेश दिया गया है। इसमें इस बात का इशारा पाया जाता है कि जिस प्रकार माता-पिता, सगे-सम्बन्धियों आदि के साथ सद्व्यवहार मानव के लिए एक नैतिक और स्वाभाविक बात है ठीक उसी प्रकार ईश्वर के आज्ञापालन और उसकी बन्दगी की माँग भी एक स्वाभाविक और प्राकृतिक माँग है जिसका मानवीय नैतिकता से गहरा सम्बन्ध है। दोनों प्रकार के हक़ों को अदा करने में एक ही आधारभूत नैतिक नियम कार्यरत है। इनमें से किसी एक की उपेक्षा करना उस आधारभूत नियम का निषेध है और इससे मानव स्वयं अपनी नैतिकता और चरित्र को भी आघात पहुँचाता है। आधारभूत नैतिक नियम जीवन के समस्त क्षेत्रों में कार्यरत हैं चाहे वह राजनितिक क्षेत्र हो या आर्थिक।

इन विवरणों के प्रकाश में इस बात का भलीभाँति अनुमान किया जा सकता है कि नैतिक दायित्वों का निर्वाह मात्र किसी बाह्य क़ानून के अनुपालन का नाम नहीं है और न ही यह आदमी का कोई ऐसा त्याग है जो किसी अजनबी (Alien) सत्ता के लिए हो, बल्कि यह तो जीवन के उन अवयवों की प्रकृति के साथ हमारे समन्वय मात्र की अभिव्यक्ति है जिनसे मानव चरित्र का निर्माण होता है। अतएव प्लेटो ने कहा है -

"Virtue will be a kind of health and beauty and good habit of the soul; and vice will be a Disease(Plato) and Deformity and Sickness of it."

"नेकी को स्वास्थ्य और एक प्रकार का सौन्दर्य और आत्मा की एक अच्छी वृति कहा जाएगा और गुनाह को रोग और आत्मा का बिगाड़ और उसकी बीमारी कहेंगे।" (G. Lowes Dickinson)

सच है, नेकी की तलाश और गुनाहों से बचना बिलकुल ऐसा ही है जैसे कोई स्वास्थ्य का इच्छुक हो और बीमारी से बचने का प्रयास कर रहा हो।

इस्लाम में नैतिकता का महत्व

ख़ुदा के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने फ़रमाया —

"अल्लाह ने मुझे नैतिक गुणों और अच्छे कामों की पूर्ति के लिए भेजा है।" (हदीस : शरहुस-सुन्नह)

"मुझे इसलिए भेजा गया है कि मैं सुशीलता को पराकाष्ठा तक पहुँचाऊँ।" (हदीस : मुसनद अहमद)

इन हदीसों में नबी (सल्ल.) ने एक बड़ी वास्तविकता को प्रकट किया है। आप (सल्ल.) कहते हैं कि मेरे भेजे जाने का अस्ल मक़सद नैतिकता और कर्म की अच्छाइयों और ख़ूबियों की पूर्ति करना है। नैतिकता वस्तुतः स्वाभाविक भावों और अनुभूतियों ही का दूसरा नाम है। अपनी यथार्थता की दृष्टि से यह एक अदृश्य चीज़ है। यह आदमी के विभिन्न क्रियाकलापों और कार्यों के द्वारा प्रकट होती रहती है। इच्छा, वश, भावनाओं और अनुभूतियों के सही और बेहतरीन इस्तेमाल से उस जीवन का आविर्भाव होता है, जिसे हम आदर्श और प्रिय जीवन कहते हैं। पैग़म्बर (सल्ल.) का अस्ल कारनामा यही है कि आप (सल्ल.) ने मानव जीवन को विभिन्न इकाइयों में विभक्त करने की अपेक्षा उसे अखण्ड रूप दिया और जीवन के प्रत्येक पहलू और उसके प्रत्येक विभाग से सम्बन्धित, चाहे उसका सम्बन्ध सामाजिकता एवं अर्थ-व्यवस्था से हो या शासन और राजनीति से, नैतिकता के सही उसूल और नियम बताए। इन्हें व्यावहारतः जीवन में बरत कर दिखाया और इन्हीं उसूलों पर समाज और राज्य की व्यवस्था स्थापित की।

पैग़म्बर (सल्ल.) के इस कथन में "मैं सुशीलता को पराकाष्ठा तक पहुँचाने के लिए भेजा गया हूँ" मानव जीवन की एक ऐसी व्याख्या निहित है

जो सत्य भी है और सर्वोत्तम भी। पैग़म्बर (सल्ल.) ने नैतिकता को घिसी-पिटी और सीमित सोच से मुक्त करके उसे विस्तृत अर्थ दिया और उसको सार्वभौमिकता प्रदान की। यहाँ तक कि मानव के व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन का कोई हिस्सा भी नैतिकता से अलग और स्वतन्त्र न रहा और जीवन उस उसूल व नियम के अनुरूप हो गया जो उसूल और नियम हमें ब्रह्माण्ड में कार्यरत दिखाई देता है और जिसकी मूल आत्मा क़ुरआन के शब्दों में यह है—

"ईश्वर का महिमागान कर रही है प्रत्येक वह चीज़ जो आकाशों में है और प्रत्येक वह चीज़ जो ज़मीन में है। उसी की बादशाही है और उसी के लिए प्रशंसा है, और उसे प्रत्येक चीज़ की सामर्थ्य प्राप्त है।" (क़ुरआन, 64:1)

अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल.) ने कहा—

"तुममें सबसे अधिक मुझे वे लोग प्रिय हैं जो तुममें नैतिकता की दृष्टि से सबसे अच्छे हैं।" (हदीस)

अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल.) ने कहा—

"तुममें से सबसे अधिक मुझे वे लोग प्रिय हैं और क़ियामत (प्रलय) के दिन उन्हीं की बैठक भी मुझसे अधिक निकट होगी जो तुममें शील-स्वभाव की दृष्टि से सबसे अच्छे हैं। और तुममें सबसे अधिक अप्रिय वे लोग हैं और क़ियामत के दिन मुझसे सबसे दूर रहनेवाले वे लोग हैं जो ज़्यादा बातें बनानेवाले, या वाक्‌चातुर्य में कुशल और बनावटी बातें करने वाले अहंकारी हैं।" (हदीस : तिरमिज़ी)

मनुष्य वास्तव में एक नैतिक अस्तित्व है। उसके अच्छे या बुरे होने का वास्तविक मानदण्ड उसका शील-स्वभाव ही है। अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल.) का विशेष सामीप्य और प्रेम उन्हीं लोगों को प्राप्त होगा जो शील-स्वभाव की दृष्टि से अच्छे और उच्च होंगे। और इसमें सन्देह नहीं कि आप (सल्ल.) का प्रेम और सामीप्य सफलता का स्पष्ट प्रतीक है।

अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल.) ने कहा–

"तुममें सबसे अच्छे वे लोग हैं जो नैतिकता की दृष्टि से तुममें सबसे अच्छे हैं।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

ज्ञात हुआ कि जीवन का मूल्य निश्चित करने में वास्तविक निर्णायक चीज़ नैतिकता है। इसलिए मुबारक हैं वे लोग जो नैतिकता की दृष्टि से अपने को अच्छी से अच्छी हालत में देखने की कामना मन में संजोए रखते हैं।

मुज़ैना क़बीले के एक व्यक्ति से उल्लिखित है कि लोगों ने पूछा–

"ऐ अल्लाह के रसूल! इनसान को जो कुछ प्रदान किया गया है, उसमें सबसे उत्तम क्या है?," आप (सल्ल.) ने कहा, "सुशीलता।" (हदीस : बैहक़ी)

सुशीलता अपने बाह्य पक्ष और परिणामों की दृष्टि से अल्लाह की एक बड़ी देन है। सुशीलता में जो आकर्षण और सौन्दर्य पाया जाता है उसे किसी और चीज़ में सोचा तक नहीं जा सकता। शील-स्वभाव में जो शक्ति और प्रभाव निहित है वह किसी चमत्कार (Miracle) में भी नहीं है। इससे शत्रुओं का दिल भी जीता जा सकता है। एक आमन्त्रणदाता और सन्मार्ग की ओर बुलानेवाले के जीवन में तो नैतिकता का सर्वाधिक महत्व होता है। पैग़म्बर (सल्ल.) की करुणा और नर्मदिली को क़ुरआन ने अल्लाह की दया कहा है। 'नुबूवत' (ईशदूतत्व) के काम को अंजाम देने में इस नैतिक गुण का जो महत्व है उसपर भी क़ुरआन ने रौशनी डाली है। कहा गया है–

"(ऐ पैग़म्बर) यह अल्लाह की दयालुता है कि तुम लोगों के लिए नर्म हो, यदि तुम क्रूर और कठोर हृदयवाले होते तो ये सब तुम्हारे पास से छँट जाते।" तुम उन्हें क्षमा कर दो और उनके लिए क्षमा चाहो और दीन (धर्म) के काम में उनसे भी परामर्श कर लिया करो।" (क़ुरआन, 3:159)

हज़रत आइशा (रज़ि.) कहती हैं कि मैंने अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल.) को यह कहते हुए सुना–

"मोमिन अपनी सुशीलता से उन लोगों का दर्जा प्राप्त कर लेता है जो रात में (ईश्वर के समक्ष) खड़े रहते हों और दिन को सदैव रोज़ा रखते हों।" (हदीस : अबू-दाऊद)

मतलब यह है कि सुशीलता एक ऐसा अभीष्ट गुण है जिससे बहुत-सी कमियाँ दूर हो जाती हैं। यहाँ तक कि अपने नैतिक गुण के द्वारा आदमी उस व्यक्ति के दर्जे और पद को भी प्राप्त कर लेता है जो रातों में अल्लाह की इबादत करता और दिन में रोज़े रखता है। सुशील मोमिन यथार्थतः सदैव अल्लाह के आज्ञापालन और बन्दगी की हालत में होता है। उसकी आत्मा की पवित्रता और सुशीलता उसे सदैव उच्च दर्जे की आध्यात्मिकता और उच्च कोटि के चरित्र से सम्बद्ध रखती है।

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि.) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल.) से पूछा गया कि अधिकतर लोग किस चीज़ कारण जन्नत में प्रवेश करेंगे? आप (सल्ल.) ने कहा—

"ईशभय और सुशीलता के कारण।"

आप (सल्ल.) से पूछा गया कि अधिकतर लोग किसके कारण दोज़ख़ (नरक) में प्रवेश करेंगे? आप (सल्ल.) ने कहा—

"मुँह और शर्मगाह (गुप्तांग) के कारण।" (हदीस : तिरमिज़ी)

जन्नत में अधिकतर लोग अपनी सुशीलता और अल्लाह से डर रखने के कारण जाएँगे। ज़बान और शर्मगाह की असुरक्षा और उन गुनाहों के कारण जो इन दोनों से सम्बन्ध रखते हैं, अधिकतर लोग दोज़ख़ में डाले जाएँगे। जो लोग ज़बान और शर्मगाह की सुरक्षा का ख़्याल रखेंगे, आशा है कि उनकी पूरी ज़िन्दगी साफ़-सुथरी और पाक होगी।

अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल.) ने कहा—

"जिसने झूठ बोलना छोड़ दिया, जबकि वह व्यर्थ (अर्थात् त्याज्य) ही है, उसके लिए जन्नत के (अन्दर) किनारे के स्थान पर मकान बनाया जाएगा। और जिस किसी ने झगड़ना छोड़ दिया जबकि वह

हक़ (सत्य) पर था, उसके लिए जन्नत के मध्य में मकान बनाया जाएगा। और जिसने अपने शील-स्वभाव को उत्तम बना लिया, उसके लिए जन्नत की ऊँचाइयों पर मकान बनाया जाएगा।"

(हदीस : तिरमिज़ी, शरहुस्सुन्नह)

इस हदीस से भी मालूम होता है कि जीवन में सुशीलता को आधारभूत महत्व प्राप्त है। जिन लोगों का जीवन सुशीलता और नैतिक गुणों से सुशोभित होगा उन्हें जन्नत के उच्च वर्ग में स्थान प्राप्त होगा, क्योंकि वास्तव में ऊँचे दर्जे के लोग वही हो सकते हैं जो नैतिक दृष्टि से उत्तम हों।

नबी (सल्ल.) ने कहा—

"क़ियामत के दिन मोमिन की कर्म-तुला में जो सबसे भारी चीज़ होगी वह सुशीलता है।" (हदीस : अबू-दाऊद, तिरमिज़ी)

सुशीलता चूँकि जीवन का वास्तविक सौन्दर्य और मौलिक मानव-चरित्र है, इसलिए स्वाभाविक बात है कि कर्म-तुला में वही सबसे अधिक भारी होगी। आदमी की पहचान इससे कदापि नहीं होती कि उसके पास सुख-सुविधा के क्या सामान हैं, बल्कि आदमी की अस्ल पहचान इससे होती है कि वह स्वयं क्या है? अल्लाह के यहाँ मूल प्रश्न यह नहीं होगा कि मानव ने संसार में कितना धन संग्रह किया और कितनी ख्याति प्राप्त की, अपितु प्रश्न यह होगा कि वह अल्लाह के पास कैसा व्यक्तित्व लेकर आया है। व्यक्तित्व का निर्माण आदमी के विचार, कर्म और नैतिक गुणों ही के द्वारा होता है। आदमी अगर नैतिक दृष्टि से पतित है तो चाहे वह संसार का सबसे धनी और सत्ताधारी व्यक्ति हो, वास्तव में वह एक निर्धन और निकृष्ट जीव है।

अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल.) ने कहा— "न तदबीर के सदृश कोई बुद्धि है और न बुराई से बचने के सदृश कोई ईशभय है और न सुशीलता के सदृश कोई कुलीनता पाई जाती है।" (हदीस : बैहिक़ी)

यह हदीस बताती है कि उस बुद्धि के सदृश कोई बुद्धि नहीं जिसके साथ तदबीर हो अर्थात् आदमी परिणाम पर नज़र रखे और विकृतियों के प्रति असावधान न हो। यदि कोई व्यक्ति बुद्धि से काम तो लेता है किन्तु इतना

नहीं कि परिणाम को देख सके तो उसकी बुद्धि और बुद्धिमत्ता उसे तबाह होने से नहीं बचा सकती।

धर्म में जिन बातों का आदेश दिया गया है और जिन बातों से रोका गया है इन दोनों ही का ध्यान रखना आवश्यक है, लेकिन कुछ पहलुओं से निषिद्ध चीज़ों से दूर रहने का महत्व आदेशों के पालन से बढ़कर है। इसकी मिसाल बिलकुल ऐसी है जैसे बीमारी की हालत में दवा के मुक़ाबले में परहेज़ का महत्व अधिक होता है।

इस हदीस से यह भी ज्ञात हुआ कि वास्तविक श्रेष्ठता और श्रेय की चीज़ सुशीलता है। यदि यह नहीं तो सब कुछ व्यर्थ है।

हज़रत आइशा (रज़ि.) कहती हैं कि अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल.) कहा करते थे—

"ऐ अल्लाह, तूने मेरी संरचना को सुन्दर बनाया, तो मेरे स्वभाव को भी सुन्दर बना दे।" (हदीस : अहमद)

अर्थात् जिस प्रकार तूने मेरे बाह्य रूप को अच्छा बनाया है उसी प्रकार मुझे आन्तरिक और नैतिक उत्तमता भी प्रदान कर। नैतिक गुणों के अभाव में मनुष्य के बाह्य अस्तित्व का कोई मूल्य शेष नहीं रहता।

अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल.) ने कहा—

"क्या मैं तुम्हें यह न बताऊँ कि तुममें अच्छे लोग कौन हैं?" लोगों ने कहा— क्यों नहीं, आप अवश्य बताएँ, ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल.)! आप (सल्ल.) ने कहा— "तुममें अच्छे लोग वे हैं जो दीर्घायु और सुशील हैं।"

(हदीस : अहमद)

आयु यदि दीर्घ है तो आदमी को अधिक से अधिक नेक काम और अल्लाह के आज्ञापालन और उसकी बन्दगी कर सकने के अवसर भी अधिक प्राप्त होते हैं।

●●●